IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

गौड़ीय सम्प्रदाय का सांगितिक अवदान

निकिता भारती
शोधार्थी,
जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

डॉ गौरव शुक्ल
शोध निर्देशक, सहायक आचार्य,
जय नारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर

शोध सारांश :–

चैतन्य सम्प्रदाय की स्थापना 15वीं सदी में संत चैतन्य महाप्रभु द्वारा की गई थी। यह सम्प्रदाय 'गौड़ीय वैष्णव' परंपरा के अंतर्गत आता है। बंगाल में गौड़ प्रदेश में इस संप्रदाय का जन्म होने के कारण इसे गौड़ीय संप्रदाय के नाम से भी जाना जाता है। इस संप्रदाय मैं भक्ति, साहित्य, संगीत में अत्यंत महत्वपूर्ण योगदान रहा है, विशेषकर कीर्तन परंपरा के माध्यम से। चैतन्य महाप्रभु ने 'हरे कृष्ण' महामंत्र के प्रचार–प्रसार के माध्यम से भक्ति का संदेश फैलाया। उनके अनुयायी विशेष रूप से हरिनाम संकीर्तन और सामूहिक पूजा में विश्वास रखते हैं, जिसमें सामूहिक रूप से भगवान श्रीकृष्ण के नामों का गान किया जाता है। चैतन्य महाप्रभु स्वयं भक्तों के साथ हरिनाम संकीर्तन में लीन रहते थे। संकीर्तन ने भक्तों के हृदय को भावविभोर करने के साथ–साथ समाज में आध्यात्मिक एकता और प्रेम का संदेश फैलाया।यह परंपरा आगे चलकर सम्पूर्ण भारत, विशेषकर बंगाल, ओडिशा, वृन्दावन और दक्षिण भारत में फैली।गौड़ीय संप्रदाय मे हमें विभिन्न प्रकार की गायन शैलियों, समाज गायन, अष्टकालीन लीला, रास लीला, पदावली और कीर्तन, वाद्य यंत्रों, आदि का वर्णन मिलता हैं। इस सम्प्रदाय के संत–रूप गोस्वामी, सनातन गोस्वामी, सभी छः गोस्वामी और कृष्णदास कविराज आदि ने संस्कृत, बांग्ला तथा ब्रज भाषा में अत्यंत भावपूर्ण भक्ति गीतों व पदों की रचना की। इन गीतों में राधा–कृष्ण लीला, वैष्णव भावना और भगवान नाम महिमा का मधुर चित्रण मिलता है। गौड़ीय संगीत परंपरा ने भारतीय शास्त्रीय और लोक संगीत को समृद्ध किया, जिसमें मृदंग, करताल और हार्मोनियम, मंजीरा का विशेष प्रयोग होता है। इस सम्प्रदाय का संगीत आज भी इस्कॉन जैसे संगठनों के माध्यम से वैश्विक स्तर पर भक्ति का संदेश फैला रहा है। प्रस्तुत शोध पत्र द्वारा गौड़ीय संप्रदाय का संगीतमय योगदान जैसे– गायन–शैलियाँ, संकीर्तन, पद कीर्तन, समाज गायन, अष्टकालीन लीलाओं के गायन व रास लीलाओं आदि का रसास्वादन कर संगीत की दृष्टि से आवश्यक जानकारी उपलब्ध कराई जाएगी।

संकेताक्षर :– गौड़ीय, संगीत, संप्रदाय, भक्ति, संकीर्तन, श्रीकृष्ण

प्रस्तावना :–

गौड़ीय संप्रदाय राधा–कृष्ण की उपासना करने वाला संप्रदाय है। यहाँ श्रीकृष्ण को पूर्ण ब्रह्म, आनंदस्वरूप और सर्वोच्च भगवान माना गया है। चैतन्य महाप्रभु के कारण यह संप्रदाय बंगाल में प्रसिद्ध हुआ, इसलिए इसे "गौड़ीय संप्रदाय" कहा जाता है। चैतन्य संप्रदाय ने भक्ति को एक विशेष रूप दिया–इसमें शास्त्र, तर्क और साधना सबका महत्व है। इस संप्रदाय ने वृंदावन को मुख्य साधना–भूमि माना और वहाँ संगीत, नृत्य और

भक्ति के माध्यम से विशेष परंपरा विकसित हुई। चैतन्य मत में संगीत और भजन का स्थान बहुत ऊँचा है, क्योंकि इनके द्वारा भगवान के प्रति प्रेम प्रकट किया जाता है।चैतन्य महाप्रभु ने वृंदावन, बैकुंठ और द्वारिका–इन तीन स्थानों को भगवान श्रीकृष्ण का धाम माना। इनमें से वृंदावन को सबसे प्रमुख बताया गया है, क्योंकि वहाँ कृष्ण अपनी लीला राधा और गोपियों के साथ करते हैं। वृंदावन की भक्ति परंपरा में संकीर्तन, भजन, नृत्य और संगीत का विशेष महत्व है। संक्षेप में, गौड़ीय संप्रदाय ने कृष्ण–भक्ति को संगीत और संकीर्तन के द्वारा जन–जन तक पहुँचाया और वृंदावन को भक्ति और संस्कृति का केंद्र बनाया। चैतन्य महाप्रभु ने कहा कि एक भक्त को नम्र और सहनशील होना चाहिए। जैसे वृक्ष सबको छाया देता है और सहता है, वैसे ही भक्त को भी बिना भेदभाव सबके साथ समान व्यवहार करना चाहिए। जाति, कुल, धन या विद्या से कोई ऊँच–नीच नहीं होती है, कृष्ण–भक्ति सबके लिए समान है। भक्ति का सबसे बड़ा साधन हरिनाम संकीर्तन है। कृष्ण के नाम का गान करना ही भक्तों के लिए श्रेष्ठ उपाय माना गया है। हरिनाम–संकीर्तन से ही प्रेम, आनंद और भगवान से सीधा संबंध प्राप्त होता है।

कृष्णदास कविराज ने 'चैतन्यचरितामृत' (अन्त्यलीला, परि०–4) में कहा है–

नीच जाति नहे कृष्ण–भजने अयोग्य ।
सत्कुल विप्रनहे भजनेर योग्य ।।
येई भजे सेई बड़ अभक्त हीन छार ।
कृष्ण भजने नाहि जाति कुलादि विचार।।
दीनेर अधिक दया करे भगवान ।
कुलीन–पंडित–धनीर बड़ अभिमान ।।[1]

अर्थात– कृष्ण–भक्ति सभी के लिए समान है। कोई नीच जाति का व्यक्ति भी अगर सच्चे मन से भजन करता है, तो वह भगवान की कृपा का अधिकारी बनता है। लेकिन जो बड़े कुल, धनवान या पंडित हैं और भजन नहीं करते, वे वास्तव में अभागे हैं।

हरिनाम संकीर्तन :–

संकीर्तन का अर्थ है भगवान के नाम, रूप, गुण और लीलाओं का सामूहिक गायन। चैतन्य सम्प्रदाय में इसे साधना का प्राण माना गया है। बंगाल में संकीर्तन–गायन की धारा पहले से चंडीदास और विद्यापति की रचनाओं के माध्यम से प्रवाहित हो रही थी, परन्तु इसका संगठित रूप चैतन्य महाप्रभु के प्रादुर्भाव से ही संभव हुआ। चैतन्य देव को ही बंगाल में संकीर्तन परम्परा का प्रवर्तक माना जाता है। चैतन्य महाप्रभु ने कीर्तन को केवल गायन तक सीमित न रखकर उसमें नृत्य और भावानुभूति को भी जोड़ा। उनके कीर्तनों में खोल (मिट्टी से बना तालवाद्य) और मंजीरा जैसे वाद्यों का विशेष प्रयोग हुआ। इस प्रकार कीर्तन एक सामूहिक संगीत और नृत्यात्मक साधना के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। महाप्रभु के तिरोभाव के बाद आचार्य श्रीनिवास, नरोत्तम ठाकुर और श्यामानंद ने इस परंपरा को आगे बढ़ाया। इनके प्रयासों से बंगाल में कीर्तन की तीन धाराएँ विकसित हुईं – गोड़ानहाटी, मनोहरशाही और रानीहाटी।

हर धर्म में संकीर्तन को पूजा का सबसे सरल और शक्तिशाली साधन माना गया है। संकीर्तन के तीन मुख्य रूप बताए गए हैं–

नाम कीर्तन (भगवान का नाम गाना)

लीला कीर्तन (भगवान की लीलाओं का गाना)

गुण कीर्तन (भगवान के गुणों को गाना)

चैतन्य महाप्रभु को विशेष रूप से श्रीकृष्ण का नाम–संकीर्तन और उनकी लीलाओं का गान बहुत प्रिय था। भक्तिभाव से किए गए कीर्तन में "हरिनाम कीर्तन" को सबसे महत्वपूर्ण साधन माना गया है।

"कृष्णेन्द्रिय प्रोति इच्छा धरे प्रेमनाम"[2]

अर्थात – जब हमारी इन्द्रियों की इच्छा भगवान कृष्ण की सेवा और उनको प्रसन्न करने के लिए हो, तभी वह प्रेम कहलाती है।

अष्टकालीन लीला :–

श्रीमद्भागवत में श्रीकृष्ण की लीलाओं का विस्तृत वर्णन है, लेकिन रोज़ाना ध्यान और साधना के लिए भक्तों को कुछ विशेष लीलाओं का क्रम चाहिए। इस कमी को पूरा करने के लिए रूप गोस्वामी ने पद्मपुराण और अन्य ग्रंथों के आधार पर "स्मरण मंगला स्तोत्र" लिखा, जिसमें श्रीकृष्ण की दिनभर की (अष्टकालीन) लीलाओं को संक्षेप में बताया। बाद में अन्य भक्त कवियों ने भी कई रचनाएँ कीं जैसे गोविंदलीलामृत (विश्वनाथ चक्रवर्ती द्वारा) और श्रीकृष्ण भावनामृत आदि। इन अष्टकालीन लीलाओं को आठ भागों में बाँटा गया है– प्रातःकाल, पूर्वाह्न, मध्याह्न, अपराह्न, सायं, रात्रि, अर्धरात्रि, और प्रातः स्मरण। इसमें श्रीकृष्ण की दिनचर्या को समयानुसार स्मरण एवं सेवा का विधान किया गया है। प्रत्येक कालखंड में उपयुक्त राग, रस और भाव के माध्यम से साधक को भक्ति में निमग्न होने का अवसर मिलता है।[3]

अष्टकालीन नित्य सेवा (रूप गोस्वामी परंपरा अनुसार)

क्रम	समय (घड़ी/प्रहर)	लीला / सेवा नाम	उपयुक्त राग	संक्षिप्त विवरण
1.	रात्रि अंत (भोर से 6 घड़ी पहले)	निशान्त लीला	भैरवी,	राधा–कृष्ण को जगाने हेतु सखियाँ एवं पक्षी मधुर स्वर करते हैं, मंगलगान होता है।
2.	प्रातःकाल (सूर्योदय के समय)	प्रातः लीला	रामकली, भैरव	माता यशोदा कृष्ण को उठाकर स्नान, श्रृंगार और भोजन की तैयारी कराती हैं।
3.	पूर्वाह्न (लगभग 8–10 बजे)	पूर्वाह्न लीला	तोड़ी, गुजरी तोड़ी	कृष्ण ग्वाल वेश धारण कर ग्वालबालों के साथ वन की ओर जाते हैं।
4.	मध्याह्न (10 बजे से 1 बजे तक)	मध्याह्न लीला	सारंग बिलावल	राधा–कृष्ण वन विहार करते हैं, सखियों संग क्रीड़ा और मधुर लीलाएँ होती हैं।
5.	अपराह्न (दोपहर	अपराह्न लीला	श्री, पूरिया	कृष्ण गायों को चराते हुए

	बाद)			संध्या की ओर लौटने लगते हैं।
6.	सायंकाल (सूर्यास्त के समय)	सायं लीला	यमन	ब्रजवासी और गोपियाँ कृष्ण का स्वागत करते हैं, ब्रज आनंदमय हो उठता है।
7.	प्रदोष (संध्या के बाद)	प्रदोष लीला	कानड़ा	स्नान, श्रृंगार और रात्रि भोजन की लीलाएँ होती हैं।
8.	रात्रि (शयन काल)	नैश लीला	बिहाग, खमाज	राधा–कृष्ण विश्राम करते हैं, सखियाँ मधुर गीत गाती हैं और शांति का वातावरण होता है।[4]

समाज–गायन :–

गौड़ीय संप्रदाय में समाज–गायन सामूहिक भक्ति–संगीत की परंपरा है। इसका उद्देश्य भक्तों को एकत्र कर भगवान की लीलाओं का स्मरण कराना और भक्ति की भावना को गहरा करना है। इसमें गाए जाने वाले पद जागरण, स्नान, भोजन, रास, होली, जन्मोत्सव आदि अवसरों पर आधारित होते हैं।

समाज–गायन की विशेषता यह है कि इसमें पद–गायन अक्षर–प्रधान होता है। यहाँ स्वर और ताल से अधिक शब्दों की स्पष्टता और भाव पर ध्यान दिया जाता है। गायन में सारंगी, वीणा और मृदंग जैसे वाद्य प्रयोग होते हैं, पर इसका मूल बल सामूहिक स्वर और भक्ति पर रहता है।

यह परंपरा केवल संगीत तक सीमित नहीं रही, बल्कि साधना और रसोपासना का माध्यम बनी। इससे भक्त राधा–कृष्ण की लीलाओं का सामूहिक अनुभव करते हैं। मुगल और औरंगजेब काल की कठिन परिस्थितियों में भी यह परंपरा जीवित रही और वृन्दावन सहित अन्य स्थानों पर निरंतर चलती रही।

अतः गौड़ीय संप्रदाय में समाज–गायन को भक्तिसंगीत की एक महत्त्वपूर्ण साधना माना गया है, जिसने ब्रज और बंगाल की सांगीतिक धरोहर को सुरक्षित और लोकप्रिय बनाया।

ध्रुपद–धमार गायन शैली :–

मध्यकालीन भारतीय संगीत की एक प्रमुख देन ध्रुपद है। यह गायकी ग्वालियर नरेश मानसिंह तोमर के समय से विशेष रूप से विकसित हुई। विद्वानों का मत है कि इसका संबंध प्राचीन ध्रुव–गान परंपरा से है। ध्रुपद की विशेषता यह है कि इसमें निश्चित और स्थिर शब्दावली, राग–ताल का गहन समन्वय तथा गम्भीरता पाई जाती है।

प्रारम्भ में "प्रबंध–गायन" संस्कृत गीतों पर आधारित था, किंतु ध्रुपद में लोकभाषा, विशेषकर ब्रजभाषा, को अपनाया गया। यही कारण है कि यह विद्वानों और सामान्य श्रोताओं दोनों को आकर्षक लगा। चैतन्य सम्प्रदाय के भक्त–संगीतज्ञों ने इस शैली को व्यापक रूप से अपनाया और अपनी भक्ति–भावनाओं को ध्रुपद में व्यक्त किया। ध्रुपद की गायकी प्रायः विलम्बित लय में होती है, जिसमें दुगुन, तिगुन, चौगुन आदि लयकारी के प्रयोग से कलात्मकता आती है। इसके मूल आधार राग, ताल, लय और भाव हैं। चैतन्य–सम्प्रदायी गायक

अपने इष्टदेव की उपासना ध्रुपद गायन द्वारा करते थे। सूरदास मदनमोहन और ललित लड़ैती जी जैसे भक्तों ने भैरवी आदि रागों में ध्रुपद रचे, जिनसे उनकी संगीत–विदग्धता स्पष्ट होती है।

ललित – लडैती जी द्वारा राग भैरवी में एक ध्रुपद निम्नांकित है–

ध्रुपद – "राग भैरवी"

"ठाड़े आली नंदलाल मुख पर अलकन को जाल
मेटे दुःख तातकाल रूप छवि निहार री।
केसर की खौल भाल सोहे उर मुक्त माल
लोचन विसाल नई हसन की बहार री।।
पीताम्बर पहिरें कहि कर सरोज लिये मुकुट
सिर मोर मुकुट चरण नूपुर झंककार री।
तोरि तृण ललित लड़ैती सांवरे की चितवन पै
दीजे तन मनहु प्रान एक संग वार री"॥[5]

आज भी वृन्दावन के कई मंदिरों में ध्रुपद शैली में पद–गायन प्रचलित है। इससे सिद्ध होता है कि यह शैली चैतन्य–सम्प्रदाय में एक प्रिय और जीवंत परंपरा रही है।

धमार

ध्रुपद के समकाल में ब्रजमंडल में उससे संबंधित एक और शैली प्रचलित हुई जिसे धमार कहा गया। इसे धमार ताल (चौदह मात्राएँ) में गाया जाता है, जबकि ध्रुपद प्रायः बारह मात्राओं की तालों में गाया जाता है। चूँकि दोनों की संरचना और प्रस्तुति निकट हैं, इसे ध्रुपद–धमार भी कहा गया।

धमार में भी तानों का प्रयोग नहीं होता, बल्कि आलाप और भाव की प्रधानता रहती है। राधा–कृष्ण भक्ति परक अनेक रचनाएँ इस शैली में मिलती हैं। चैतन्य सम्प्रदाय के भक्त कवियों ने भी इसका भरपूर प्रयोग किया। सूरदास मदनमोहन जी ने राग गौरी में एक प्रसिद्ध धमार की रचना की है, जिसमें होली के उत्सव, ब्रज की गोपियों की शोभा और ऋतु की उमंगों का सुंदर चित्रण मिलता है।

रचना "राग गौरी" में इस प्रकार है–

खेलत हैं हरि हो हो होरी। ब्रज तरुनि इस सिंधु झकोरी ॥

बाला वय संधि नव तरुनी। जीवन भरी चपल हग हरनी ॥
नव सत सजि गृह कहतें निकसी। मानुहुँ कमल कली सी विकसीं।।
पिक बचनी तन चंपक बरनी। उपमा कौं नहिं मनसिज घरनी ॥

बरन बरन कंचुकी अरू सारी। मानहूं काम रचि फुलवारी ॥
द्वादस आभरन सजि कंचन तन । मुख शशि आभूषन तारागन ।
मानौं मनोभव मन तें तें कीनीं। और त्रिभुवन की सोभा लीनी ॥
देखत दृष्टि न छिन ठहराई। जनु जल झलमलात रवि झाई ।।
ताल मृदंग उपंग बजावत । डफ आबज सुर एक सजावत ॥

मधुरितु कुसुमित वन भई वौरी। गावत फाग राग रति गौरी ॥[6]

इससे स्पष्ट है कि धमार गायन–शैली ने चैतन्य सम्प्रदाय की भक्ति परंपरा को समृद्ध किया और इसे ध्रुपद की ही समानान्तर, भावप्रधान शाखा माना गया।

रास–लीला में संगीत और नृत्य :–

चैतन्य सम्प्रदाय के गोस्वामी कृष्णदास कविराज के अनुसार ब्रज की रास–लीला का आधार प्राचीन हल्लीसक नृत्य है। रास का क्रम इस प्रकार बताया गया है – वनविहार, चक्रभ्रमण, हल्लीसक, युग्म नृत्य, तत्पश्चात् तांडव, लास्य और अंत में कृष्ण का एकल नृत्य। इसके अतिरिक्त सखियों का प्रबन्ध–गान, नृत्य–रति, परिहास और जल–केलि भी इसके अंग हैं।

कविराज ने गोविन्दलीलामृतम् में रास का विस्तृत चित्रण किया है। उन्होंने कृष्ण–गोपियों के सामूहिक गायन, वंशीवट पर यमुना–दर्शन तथा मंडलाकार नृत्य का वर्णन करते हुए संगीत–शास्त्र की सूक्ष्म जानकारी दी है। रास में गाए जाने वाले प्रमुख राग हैं –

- कृष्ण और गोपियाँ मिलकर गाए राग – मल्हार, कर्णाटक, नट, मालव।
- केवल गोपियों द्वारा गाए राग – गुज्जरी, रामकली, गौरी, आसावरी, गुणकली, तोड़ी, विलावल, मंगल–गुज्जरी, वराटिका, देश, मागधी, कौशिकी, पाली, मंगला गुज्जरी, ललित, पट–मंजिरी, सुगाव, सिंन्दूरा।

वाद्यों में मृदंग, डमरू, मण्डु, ममक, मुरली, पादिका, वंशी, मन्दिरा, करताल, विपंची, महती वीणा, कच्छपी, करिनासिका, स्वरमंडली, रुद्र वीणा आदि का प्रयोग मिलता है, जिनमें से कई आज अप्रचलित हैं।

नृत्य–मुद्राओं में सर्पफण, हंसग्रीवा, हस्तक (कच्छप आदि जन्तुओं जैसी), पताका, अंसास्य (हंसमुख), कर्तरीमुख (कैंची जैसी), शुकास्य (तोते के मुख जैसी) आदि का प्रयोग हुआ।

तालों की सूची अत्यंत विस्तृत है, जैसे चंचत्पुट, चाचपुट, रूपक, सिंहवन्दन, गज लीला, एक ताल, निष्सारी, अडड़क (आड़ताल), प्रतिमंट, झम्प (झप ताल), त्रिपुट, यदि नलकूबर, तुद्धट्ट, कुदृक, कक्लाख, दर्पण, राज कोलाहल, शचीप्रिय, रंगाविद्याधर, बादक, अनुकूल, कंकण, श्री रंग, कन्दर्य, षटपितापुत्रक, पार्वती लोचन, राजचूड़ामणि, जयाप्रि, रतिलील, त्रिभंगी, चच्चरत, बारविक्रम इत्यादि, किंतु अधिकांश ताल आज लुप्त हो चुकी हैं।

इस प्रकार रास–लीला संगीत, नृत्य, राग, ताल और लोक–परंपराओं का एक अद्वितीय समन्वय है, जिसे कविराज ने गहन कलात्मकता से प्रस्तुत किया।[7]

पदावली कीर्तन :–

चैतन्य से पूर्व वैष्णव पदावली की परंपरा जयदेव, विद्यापति और चंडीदास जैसे कवियों से प्रारंभ होती है। जयदेव के गीत गोविन्द को इस परंपरा का आधार माना जाता है। चैतन्य महाप्रभु ने इन पदों को शास्त्रीय गरिमा प्रदान की और उनके अनुयायियों ने अष्टपदियों का गायन कर इन्हें लोकप्रिय बनाया। इसी क्रम से लीला–कीर्तन या पदावली कीर्तन की परंपरा का जन्म हुआ। पदावली छोटे–छोटे छंदों में रचित होती है, जिनके अंतिम चरण पर कवि का नाम (भणिता) रहता है।

प्रमुख प्रवृत्तियाँ :–

- चैतन्य के बाद नरोत्तम ठाकुर, श्रीनिवास और श्यामानंद ने सम्प्रदाय का नेतृत्व किया और कीर्तन की तीन धाराएँ प्रचलित हुईं–

1. गौड़ानहाटी – नरोत्तमदास द्वारा प्रवर्तित, ध्रुपद और प्रबन्ध शैली पर आधारित।
2. मनोहरशाही – ज्ञानदास और अन्य संतों द्वारा, जिसमें ख्याल जैसी जटिल लय–छंद का प्रयोग हुआ।
3. रानीहाटी – संक्षिप्त छंद और 27 प्रकार की तालों पर आधारित, जिसे ठुमरी शैली से तुलना की जाती है।

इसके अतिरिक्त झाड़खंडी, ढप कीर्तन और मंदारिणी जैसी अन्य स्थानीय धाराएँ भी विकसित हुईं।

कीर्तन की संरचना :–

कीर्तन गायन के पाँच अंग बताए गए हैं–

1. कथा – राधा–कृष्ण की वार्तालाप या गीतों को जोड़ने वाली उक्तियाँ।
2. दोहा – सूत्ररूप में छंद।
3. आखर – गाए गए पद का भाव स्पष्ट करने के लिए जोड़े गए शब्द।
4. तुक – अंत्यानुप्रास युक्त गाथा।
5. छूट – उसी पद को कम मात्रा वाली ताल में पुनः गाना।

कीर्तन सामान्यतः एक मुखिया गायक, दो दोहार (सहगायक), खोल और करताल वादकों के साथ सामूहिक रूप से होता है।

विषय–वस्तु :–

पदावली कीर्तन का मुख्य आधार तीन विषय हैं–

1. कृष्णलीला
2. प्रार्थना
3. चैतन्य लीला

इनसे संबंधित मिलन, जलक्रीड़ा, जन्मलीला, रास, होली, झूलन आदि अनेक पालाएँ गाई जाती हैं। साथ ही अष्टकालीन नित्यलीला भी प्रमुख विषय है।

संगीत–संबंधी पहलू :–

पदावली रचनाएँ विभिन्न रागों (नट, भैरवी, पूर्वी, जयजयवन्ती, विभास, ललित–भैरवी, गौड़ी, भटियाली आदि) और तालों में बद्ध होती हैं। कीर्तन में प्रयुक्त तालों की संख्या 200 से अधिक बताई जाती है। नरोत्तम और श्रीनिवास ने प्रायः मिश्र रागों का प्रयोग किया, जो आज भी गौड़ीय परंपरा की विशेषता है।

निष्कर्ष :–

गौड़ीय सम्प्रदाय का सांगितिक अवदान भक्ति और संगीत, दोनों के विकास में बहुत महत्वपूर्ण रहा है। चैतन्य महाप्रभु ने संकीर्तन को साधना का प्रमुख माध्यम बनाया। उन्होंने यह दिखाया कि संगीत और भक्ति एक–दूसरे के पूरक हैं। कीर्तन में सामूहिक रूप से राग, ताल और वाद्यों (जैसे मृदंग, करताल) का प्रयोग करके भक्त लोग आनंद और प्रेम में डूब जाते थे। इस प्रकार संगीत केवल मनोरंजन का साधन न रहकर, ईश्वर–प्राप्ति और हृदय की शुद्धि का मार्ग बन गया। गौड़ीय सम्प्रदाय ने संकीर्तन को जन–जन तक पहुँचाया। इससे संगीत लोकजीवन में गहराई से जुड़ गया। पदावली–काव्य में रचित भक्ति–गीत, रागों पर आधारित संगीतमय प्रस्तुति और सामूहिक गान–नृत्य ने भक्ति आंदोलन को लोकप्रिय बनाया। विद्यापति, चंडीदास और अन्य कवियों की रचनाओं ने इस संगीतमय परंपरा को और समृद्ध किया। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि गौड़ीय सम्प्रदाय का सांगितिक योगदान भारतीय संगीत के इतिहास में अनोखा है। इसने भक्ति और संगीत को मिलाकर एक नई संस्कृति का निर्माण किया। संकीर्तन आंदोलन ने सामूहिक भक्ति–संगीत की ऐसी परंपरा दी, जो आज भी मंदिरों, उत्सवों और अंतरराष्ट्रीय मंचों पर गूँजती है। यह परंपरा संगीत को साधना, सामाजिक एकता और प्रेम के प्रसार का माध्यम बनाती है।

संदर्भ ग्रंथ सूची :–

1. मीतल, डॉ० प्रभुदयाल, 'चैतन्यमत और ब्रज साहित्य', साहित्य संस्थान मथुरा, 1962 पृ० 91.
2. स्वरूप, पाठक, डॉ० आनन्द, 'ब्रज साहित्य और संस्कृति, शिक्षा ग्रन्थागार, मथुरा 1975, पृ० 56
3. बिष्ट, डॉ. कृष्णा, "द सेक्रेड सिम्फनी : अ स्टडी ऑफ बुद्धिस्टिक एंड वैष्णव म्यूज़िक ऑफ बंगाल इन रिलेशन टू हिंदुस्तानी क्लासिकल म्यूज़िक" भागीरथ सेवा संस्थान, 1986, पृ०84
4. सैम्भी नीलम, चैतन्य संप्रदाय और संगीत, प्रिन्टवेल जयपुर,1994
5. श्री दम्पति विलास : पृ. 89.
6. श्री सूरदास मदनमोहन जी की वाणी : पद संख्या – 82, पृ. 35.
7. सक्सेना, डॉ० राकेश बाला, मध्ययुगीन वैष्णव सम्प्रदायों में संगीत, राधा पब्लिकेशंस्, नई दिल्ली, 1990
8. सक्सेना, डॉ० राकेश बाला, ब्रज के देवालयों में संगीत परम्परा, संगीत कार्यालय, हाथसर,
9. शर्मा, डॉ. नीरा, अष्टछाप संगीत एक विश्लेषण, नवजीवन पब्लिकेशन, नीवाई 2004